इकाई 9 एक संसदीय लोकतंत्र होने का अर्थ

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 क्रम-विकास

9.2.1 सरकार की संसदीय प्रणाली के अभिलक्षण

9.3 भारत में संसदीय प्रणाली

9.4 सारांश

9.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

9.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

9.0 उद्देश्य

संसदीय प्रणाली – संस्थाएँ और प्रक्रियाएँ – ब्रिटेन में विकसित हुई और अनेक देशों द्वारा परिष्कृत कर अपनायी गई है। यह इकाई भारत के विशेष संदर्भ के साथ एक संसदीय प्रणाली के अभिलक्षणों की जाँच करती है। इस इकाई को पढ़ने के बाद, आप इस योग्य होंगे कि

- एक संसदीय लोकतंत्र का अर्थ स्पष्ट कर सकें;
- सरकार की संसदीय प्रणाली के विकास का सूत्रबद्ध वर्णन कर सकें;
- सरकार की संसदीय प्रणाली के अभिलक्षणों को पहचान सकें; और
- भारत में विद्यमान संसदीय प्रणाली का मूल्यांकन कर सकें।

9.1 प्रस्तावना

संसदीय प्रणाली शब्द-पद दो मुख्य अर्थों में प्रयोग किया जाता है। एक विस्तृत अर्थ में, यह उन सभी राजनीतिक व्यवस्थाओं को इंगित करती है जहाँ वित्त-प्रबंध समेत विधि-निर्माण हेतु उत्तरदायित्व संभाले हुए जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों की एक सभा विद्यमान होती है। 'संसद' शब्द अंग्रेजी के 'पार्लिअॅमॅन्ट' शब्द का अनुवाद है जो फ्रैंच शब्द 'पार्ले' से निकला है जिसका अर्थ है बात करना अथवा संधि-वार्ता करना। यह शब्द सम्मेलनों का वर्णन करने में भी प्रयुक्त होता था, जैसे 1245 में फ्रांस सम्राट् तथा पोप के बीच होने वाले विचार-विमर्श। धीरे-धीरे यह शब्द उन व्यक्तियों के निकाय के लिए प्रासंगिक हो गया जो सरकारी नीतियों एवं वित्त-साधनों पर चर्चा करने व उन्हें स्वीकृति प्रदान करने हेतु एकत्रित होते हैं। सरकार के अन्य दो अंगों की अपेक्षा जनता व जनमत के अधिक करीब रहने वाली संसद जनता की परम इच्छा का प्रतिनिधित्व करने का दम भरती है। अधिक सर्वमान्य रूप से, शब्द-पद संसदीय प्रणाली अथवा 'संसदीय सरकार' एक ऐसी व्यवस्था को इंगित करती है जो अध्यक्षीय प्रणाली वाली सरकार से भिन्न होती है। अध्यक्षीय प्रणाली वाली सरकार से भिन्न, जो शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत पर आधारित होती है, संसदीय प्रणाली में सरकार के कार्यकारी तथा विधायी अंगों का संयोग होता है। एक संसदीय सरकार के अभिलक्षणों की जाँच-परख करने से पहले चलिए देखते हैं कि ब्रिटेन में संसदीय प्रणाली कैसे विकसित हुई।

9.2 क्रम-विकास

ब्रिटिश संसद की जड़ें तेरहवीं शताब्दी में तलाशी जा सकती हैं जब ग्रेट ब्रिटेन के किंग जॉन ने कर उगाही की आवश्यकता और उनके तरीकों पर उसे सलाह देने के लिए कुछ विचारशील नाइटों व अन्य भद्रजनों की सभा बुलाई। ये सभाएँ सार्वजनिक महत्त्व के विशिष्ट विषयों पर सम्राट को सलाह देने के लिए भी प्रयोग की जाती थीं। इन सभाओं को पार्लियामेण्ट (*पार्लिअॅमॅण्ट*) कहा जाता था। एडवर्ड प्रथम के शासन के दौरान, एक प्रतिरूप संसद बुलाई गई। इसको प्रतिरूप इसलिए कहा गया क्योंकि यह ब्रिटिश समाज के एक प्रतिनिधित्व समूह को प्रतिरूप प्रदान करती थी। पोप तथा स्पेन के राजाओं के विरुद्ध अपने संघर्ष में, ट्यूडर वंश ने अपनी कार्रवाइयों को वैध ठहराने के लिए पार्लियामेण्ट की स्वीकृति माँगी। इस प्रक्रिया के दौरान, नियमों, क़रों, धार्मिक व विदेश-नीतियों के लिए पार्लियामेण्ट की स्वीकृति लेने की प्रथा को व्यापक स्वीकृति मिली। स्टुअर्ट शासन के दौरान, धार्मिक व विदेश नीतियों पर राजाओं तथा पार्लियामेण्ट के बीच एक संघर्ष छिड़ा जिसने एक गृह-युद्ध की ओर प्रवृत्त किया जो राजद्रोह के लिए किंग चार्ल्स (1649) को प्राणदण्ड तथा रक्तहीन क्रांति (1688) में किंग जेम्स द्वितीय के अपदस्थ होने में परिणत हुआ। राजाओं को मानना पड़ा कि पार्लियामेण्ट की सहमति के बग़ैर कोई कानून पास नहीं किया जा सकता है न ही कर लगाया जा सकता है, और यह भी कि राजा का ताज पार्लियामेण्ट की वजह से ही है।

अठारहवीं सदी के प्रारम्भ में किंग जोर्ज प्रथम के शासन के दौरान, मंत्रिमण्डल की व्यवस्था साकार होने लगी। जर्मन मूल के होने के कारण किंग जोर्ज अंग्रेजी नहीं बोल पाते थे और ब्रिटिश राजनीति में उनकी दिलचस्पी नहीं थी। उसकी प्रवृत्ति शासन के वास्तविक कार्यों को अपने मुख्यमंत्रियों अथवा प्रशासकों पर डाल देने की थी जो राजा को सलाह देने के लिए नियमित रूप से मिलने लगे। ये मंत्री पार्लियामेण्ट के सदस्यों से चुने जाते थे ताकि वे उस निकाय को चला सकें और करों के लिए आवश्यक नियम अथवा प्रस्ताव पास करा सकें। उन्होंने स्वयं को एक परिषद् में एकजुट किया जिसे आज कैबिनेट अथवा मंत्रिपरिषद् के रूप में जाना जाता है यानी एक प्रकार का संघ सदृश कार्यकारी समूह। पार्लियामेण्ट के सदस्यों को कैबिनेट द्वारा निर्देश व सलाह देने का कार्य किया जाता था, और शीघ्र ही *पार्लियामेण्ट तथा कैबिनेट मिलकर* ब्रिटेन की सरकार बन गए। किंग जोर्ज द्वितीय भी चूँकि जर्मन मूल के थे, ने भी उस प्रथा को जारी रखा। जब किंग जोर्ज तृतीय, एक जन्मजात ब्रिटिश तथा अंग्रेजी भाषी ने सिंहासन सम्भाला, यह संसदीय प्रणाली भली भाँति स्थापित हो गई।

कैबिनेट के भीतर, कैबिनेट सभाओं की अध्यक्षता करने तथा उसके निर्णयों को स्वयं तक पहुँचाने के लिए राजा एक व्यक्ति विशेष पर भरोसा करने लगा जिसे प्राइम मिनिस्टर अर्थात् प्रधानमंत्री कहा जाता था। सर रॉबर्ट वालपोल (1721-42) प्रधानमंत्री के पद को सुशोभित करने वाले प्रथम व्यक्ति थे। इस पद की पूर्व-प्रतिष्ठा पिट द एल्डर, पिट द यंग, डिज़रायली तथा ग्लैडस्टोन जैसे प्रधानमंत्रियों की योग्यताओं द्वारा सुदृढ़ की गई। एक ओर 1832 के सुधारों के बाद राजनीतिक बलों के पुनर्गठजोड़ के उपरांत लिबरल (उदारवादी) तथा कन्ज़र्वेटिव (रूढ़िवादी) पार्टियों के उदय से और दूसरी ओर मताधिकार के प्रसार से प्रधानमंत्री की स्थिति मज़बूत हो गई। प्रधानमंत्री देश का नेता तथा सरकार का मुखिया बन गया।

वैस्टमिन्सटर गवर्नमेण्ट के नाम से भी विख्यात (चूँकि पार्लियामेण्ट वैस्टमिन्सटर, लन्दन में स्थित है), ब्रिटिश संसदीय प्रणाली के कुछ अनूठे अभिलक्षण हैं। प्रथम, ऐसा कोई एक भी दस्तावेज़ नहीं है जिसका संदर्भ संविधान के रूप में लिया जा सके। व्यवस्थाएँ व प्रथाएँ औपचारिक समझौतों के माध्यम से विकसित हुई हैं। दूसरे, किसी लिखित संविधान के अभाव में इसमें कोई भी विशेष संशोधन प्रक्रिया नहीं है। ब्रिटिश संसद में काफी लचीलापन है। अक्सर संसदीय सर्वोच्चता के रूप

में व्याख्यायित, ब्रिटिश संसद के पास किसी कानून को बनाने अथवा किसी बने हुए कानून को संशोधित करने का, न्यायपालिका द्वारा मान्य, अपरिमित अधिकार है। किसी भी अन्य निकाय अथवा न्यायालय को इसके विधान को नाजायज़ ठहराने अथवा रद्द करने का अधिकार नहीं है। यद्यपि, ब्रिटिश प्रणाली के अनुसार प्रतिरूपित विधायिकाओं को मिलाकर, विश्व की कुछ ही विधायिकाएँ सभी संवैधानिक मर्यादाओं के इस अर्थ में स्वतंत्र हैं। वैस्टमिन्सटर गवर्नमेण्ट की तर्ज पर प्रतिरूपित संसदीय लोकतंत्रों के क्या अभिलक्षण हैं? एक संसदीय लोकतंत्र होने का क्या अर्थ है?

9.2.1 सरकार की संसदीय प्रणाली के अभिलक्षण

एक संसदीय लोकतंत्र अथवा संसदीय प्रणाली होने से क्या अभिप्राय है? इस प्रणाली वाली सरकार के क्या मुख्य अभिलक्षण हैं? संसदीय लोकतंत्र एक स्वतंत्र निकाय में कार्यकारी तथा विधायी शक्तियों के संयोग द्वारा अभिलक्षित है। यह कार्यकारिणी, कैबिनेट मंत्रिगण, संसद-सदस्यों के रूप में बैठते हैं और कार्यकारी तथा विधायी शक्ति विलयीकरण में एक दोहरी भूमिका निभाते हैं। वे जो विधान को कैबिनेट सदस्यों के रूप में उपयुक्त बताते हैं, इसी विधान को शासी विधायिका के सदस्यों के रूप में भी बहुमत से स्वीकार करते हैं। आदर्शरूपत:, कैबिनेट तथा संसद में बहुमत दल अथवा दल-गठजोड़ के शेष सदस्य ही सरकार हैं। सरकार के पास, एक अर्थ में, एक स्वचल बहुमत होता है और अधिकतर निर्णय इन्हीं समूहों के बीच से ही किए जाते हैं। चूँकि कार्यकारिणी संसद में बहुमत समर्थन के आधार पर चुनी जाती है न कि सीधे चुनी जाती है, सरकार केवल संसद के प्रति जवाबदेह होती है।

दूसरे, सरकार की कार्यकारी शाखा राज्य के एक प्राय: औपचारिक मुखिया (राजा) और सरकार के मुखिया (प्रधानमंत्री) के बीच बँटी है जो अधिकांश कार्यकारी शक्तियों का प्रयोग करता है और संसद के प्रति उत्तरदायी होता है। राज्य-प्रमुख का काम शासन करना नहीं बल्कि यह देखना है कि कोई सरकार अवश्य हो। जब कोई संकट खड़ा होता है, किसी गठबन्धन सरकार के गिर जाने से अथवा किसी राष्ट्रीय आपात्स्थिति से, राज्य-प्रमुख की जिम्मेदारी है कि सरकार बनाने का किसी व्यक्ति को चुने और शासी कारोबार आगे बढ़ाए। प्रधानमंत्री सरकार-प्रमुख होता है, जिसका कार्य है नीति बनाना और अपने मातहतों के माध्यम से कानून सुझाना। प्रधानमंत्री कैबिनेट का नेतृत्व करता है और इसी कारण सरकार का भी। राज्य-प्रमुख 'बागडोर सम्भालता है परन्तु शासन नहीं करता'।

संसदीय लोकतंत्र का अर्थ है – कॅलीजियल यानी संघ-सदृश्य कार्यकारिणी। यद्यपि प्रधानमंत्री मुख्य कार्यकारी होता है, वह कोई असाधारण कार्यकारी नहीं होता। संघ-सदृश्य कार्यकारिणी मंत्रियों (कैबिनेट) का एक समूह होता है जिनको एक गुट्ट के रूप में निर्णय लेने चाहिए और विधान के उपयुक्त बताए जाने अथवा नीतियाँ प्रस्तावित किए जाने से पूर्व आम सहमति बनानी चाहिए। मंत्रिगण अपनी कार्रवाइयों के लिए संसद के प्रति वैयक्तिक तथा सामूहिक, दोनों रूप से उत्तरदायी होते हैं।

संसदीय लोकतंत्र का अर्थ दलगत उत्तरदायित्वाधारित एक लोकतंत्र भी है। जैसा कि हमने देखा, बहुमत दल अथवा संसद में बहुमत-उच्च दलों का एक गठजोड़ सरकार बनाता है। एक संसदीय प्रणाली में राजनीति दल एक स्पष्टत: परिभाषित घोषणा-पत्र रखते हैं और विस्तृत विषय-वैविध्य के सम्बन्ध में पार्टी की स्थिति क्या है, बताई गई होती है। पार्टी घोषणा-पत्र का यथासंभव सामञ्जस्य के साथ अनुपालन किया जाता है। यदि कैबिनेट विधान का कोई ऐसा अंश सुझाती है जो पार्टी घोषणा-पत्र में दिए गए किसी वचन का पालन करता है, बहुमत दल घोषणा-पत्र के सभी सदस्यों को उस विधि विशेष हेतु मतदान करना होगा। ऐसा न करना पार्टी के रोष को आमंत्रण देना और

तदोपरांत उस पार्टी का टिकट लेकर अगले चुनाव में नामांकित किए जाने से वंचित किया जाना होगा। एक संसदीय प्रणाली में सरकार, इसीलिए अधिकांश विषयों पर एक सुदृढ़ बहुमत और अपनी अभिलाषा को सामान्यत: अभिभावी रखती है। अल्पमत दल इन विषयों, कानूनों व प्रस्तावों पर बहस कर सकते हैं। और सुझाए गए संशोधनों के माध्यम से वे छुट-पुट परिवर्तन कराने में सफल भी हो सकते हैं। बहरहाल, अल्पमत बहुमत द्वारा लाए गए किसी विधेयक को तब तक निष्फल बिल्कुल भी नहीं कर सकता जब तक पार्टी उत्तरदायित्व का नियम लागू रहता है।

बोध प्रश्न 1

नोट : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिए गए आदर्श उत्तरों से करें।

1) संसदीय प्रणाली वाली सरकार का एकमात्र सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अभिलक्षण क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

2) 'संघ-सदृश्य कार्यकारिणी' शब्द-पद का क्या अर्थ है?

.....

.....

.....

.....

.....

9.3 भारत में संसदीय प्रणाली

जब भारत उपनिवेशवाद से सभी रिश्ते तोड़कर एक स्वाधीन लोकतांत्रिक गणतंत्र बनने की तैयारी कर रहा था, लगभग उसी समय राज्य के ऐसे प्रतिरूप यानी मॉडल की तलाश शुरू हुई जिस पर हमारे संस्थागत ढाँचे खड़े किए जाने थे और राजनीति प्रक्रियाओं को चालू करवाया जाना था। विविध हितों व अभिलाषाओं को लिए विभिन्न वर्ग, जाति-समूह, प्रजातीय तथा धार्मिक अल्पसंख्यकों को प्रतिबिम्बित करती हमारी सामाजिक वास्तविकता के जटिल स्वभाव के कारण यह खोज मुश्किल बन गई थी।

उस समय के लगभग सभी विचारक और कार्यकर्त्ता एक ऐसी राज्य-व्यवस्था विकसित करने के प्रति उत्सुक थे जो भारतीय समाज के सभी वर्गों के हितों व आकांक्षाओं के अनुरूप हो। जयप्रकाश

नारायण ने, उदाहरण के लिए, भारतीय राज्य के पुनर्निर्माण हेतु दलील पेश करते हुए एक ऐसे युक्तिसंगत एवं वैज्ञानिक आदर्श की आवश्यकता पर ज़ोर दिया जो भारतीय परिस्थितियों तथा यथार्थताओं के अनुरूप हो। दूसरे शब्दों में, उन्होंने एक ऐसे समन्वयात्मक आदर्श हेतु तर्क प्रस्तुत किया, जो उस प्राचीन भारतीय राज्य की प्रथाओं को यथोचित सम्मान दे जो, निरे पाश्चात्य आदर्श से भिन्न, मनुष्य के सामाजिक स्वभाव तथा समाज के वैज्ञानिक संघटन के साथ सुरबद्ध हो संगठित था। उन्होंने एक ऐसे सामाजिक व राजनीतिक जीवन हेतु तर्क दिया जो मानवीय मूल्यों की संरक्षा सुनिश्चित करे।

बड़े राज्य प्राधारों को अस्वीकृत करते हुए, महात्मा गाँधी ने ऐसे विकेन्द्रीकृत ढाँचों की स्थापना का पक्ष लिया जिनके सामाजिक व राजनीतिक नियम आचार-संहिता द्वारा सूचित होते हों। उन्होंने अनुभव किया कि हम जिसे संसदों की जननी मानते हैं, समष्टि रूप में अंग्रेजी समाज हेतु कुछ भी भला करने में नैतिक रूप में लाचार है। यह संसद, गाँधी जी के अनुसार, उन मंत्रियों के नियंत्रण में रहती है जो निरंतर बदलते रहते हैं। इसके अतिरिक्त, गाँधीजी के लिए, दलीय प्रणाली के विकास तथा एक भीड़ के मनोविज्ञान, वाग्मितापूर्ण रूप से पुकारे जाने वाले पार्टी अनुशासन, द्वारा परिचालित पार्टी सदस्यों द्वारा विषयों के मूल्यांकन ने संसद की बर्बादी की ओर प्रवृत्त किया है। बहरहाल, अंग्रेजी संसद का यह उपहास स्वभावत: संसद की व्यवसथा के प्रति गाँधीजी की उदासीनता को इंगित नहीं करता है। वह चाहते थे कि लोग एक ऐसी संसद चुनें जिसके पास वित्त-प्रबंध, सशस्त्र बलों, न्यायालयों तथा शैक्षणिक संस्थाओं पर सम्पूर्ण अधिकार हो। संक्षेप में, वह भारत की जनता की इच्छाओं व आवश्यकताओं के अनुसार संसदीय स्वराज की कामना करते थे।

यद्यपि, आर्थिक विकास की लाचारियाँ "जनता" की एक संघबद्ध सामूहिकता के तहत विविध तत्त्वों तथा हितों के राजनीतिक एकीकरण को सुनिश्चित करने की आवश्यकता से जुड़ीं, हमारे नेतागण विस्तृत ढाँचों, संस्थाओं तथा राजनीतिक प्रक्रियाओं वाले एक विशाल आधुनिक राज्य-निर्माण की कार्यसूची पर सहमत हुए। एक ऐसी लोकतांत्रिक सरकार जो लोगों की इच्छाओं के प्रति जवाबदेह रहे और उनकी विविध आकांक्षाओं का यथायोग्य रूप से प्रतिनिधित्व करे, की अपनी खोज में हमारे आधुनिक राज्य-निर्माताओं ने विभिन्न देशों तथा उनके राजनीतिक अनुभवों पर निर्भर रहना चुना। किसी संघीय संसदीय प्रणाली को चुना जाना एक औपनिवेशिक विरासत तथा अनुभव का परिणाम था। अठारहवीं सदी के प्रारम्भ में औपनिवेशिक शासन की शुरुआत से ही विधायी अनुभव का, आगामी वर्षों में प्रतिनिधित्व के तरीके व स्वभाव में परिवर्तन के साथ, शासन की हमारी स्वतंत्रोत्तर प्रणाली के नियामक प्राचार को अभिव्यक्त करने में एक गहन प्रभाव था।

स्वाधीन भारत में, एक संसदीय स्वरूप वाली सरकार ऐसी सांस्थानिक युक्ति के रूप में अंगीकार की गई जिसके माध्यम से लोकतांत्रिक विचारधारा को साकार करने का प्रयास किया गया। इस सांस्थानिक प्राधार का नेतृत्व राष्ट्रपति द्वारा किया जाता है, जो राज्य व कार्यपालिका का मुखिया होता है; कार्य-निष्पादन प्रधानमंत्री द्वारा किया जाता है, जो सरकार का मुखिया होता है; तथा न्यायपालिका का सर्वोच्च न्यायालय द्वारा, जबकि संसद को विधायी शक्तियों का व्यवहार कार्य सौंपा जाता है। ये संस्थान सरकार के विधायी तथा कार्यकारी स्कंधों के संयोग पर आधारित संसदीय सरकार के ढाँचे के अंतर्गत कार्य करते हैं। कार्यपालिका, प्रधानमंत्री के नेतृत्व वाली मंत्रिपरिषद्, विधायिका से आती है और उसके प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होती है। अन्य शब्दों में, संसद-सदस्यों के माध्यम से ही भारत की जनता कार्यपालिका पर नियंत्रण रखती है।

लोकतंत्र के इस स्वरूप के मुख्य सिद्धांत हैं – वयस्क मताधिकार पर आधारित आवधिक चुनावों के माध्यम से सरकार पर एक सार्वजनिक नियंत्रण की विद्यमानता; उसके नागरिकों को स्वतंत्रताओं का अनुदान; और उन स्वतंत्रताओं की रक्षार्थ एक स्वतंत्र न्यायपालिका की मौजूदगी। सरकार

अनिराकरणीय नहीं है और उन सभी के लिए आवधिक रूप से खुली है जो जनता का समर्थन प्राप्त कर लेते हैं और इसमें एक व्यक्ति के रूप में अथवा किसी दल के सदस्य के रूप में प्रवेश करते हैं। चुनाव-विधि अनुनय, संभाषण, तथा मानस परिर्वतन के माध्यम से प्रभावित होती है; राय परिवर्तन गुप्त मत-पत्र के माध्यम से किया जाता है। इसके अतिरिक्त, हमारे संसदीय लोकतंत्र की निहित अभिधारणा है – उदार लोकतांत्रिक तथा वैयक्तिवादी सिद्धांतों के प्रति आस्था।

इस विस्तृत संसदीय प्राधार को सुचारू बनाने की प्रक्रिया उन राजनीतिक दलों पर निर्भर करती है जो सरकार के किसी संसदीय स्वरूप में निर्णायक तत्त्वों को अंगीभूत करते हैं। बहरहाल, राज्य-व्यवस्था में सभी रंगों व विचारधाराओं वाले, कभी-कभी सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था की विरोधी व भिन्न संकल्पनाओं वाले, राजनीतिक दलों का विद्यमान होना हमारी संसदीय प्रक्रियाओं की सुचारुता को मुश्किल बना देता है। इस प्रकार, संविधान द्वारा बनाए गए विभिन्न कार्यालयों के बीच संबंध को नियमित करने हेतु बिना किसी टिकाऊ प्रथा अथवा नियम वाले एक देश में संसदीय लोकतंत्र की व्यवहार्यता और आर्थिक भ्रष्टता वाली परिस्थितियों के चलते एक कल्याणकारी राज्य के रूप में कार्य करने में असमर्थता के विषय में प्रश्न उत्तरोत्तर रूप से उठाए जा रहे हैं। ये प्रश्न सरकार के कैबिनेट स्वरूप के स्थान पर अध्यक्षीय प्रणाली की भाँति सरकार के वैकल्पिक स्वरूपों हेतु प्रस्तावों के साथ आगे बढ़ाए जा रहे हैं। तथापि, हमें याद रखना चाहिए कि कुछ संशोधनों के साथ 'वैस्टमिन्सटर मॉडल' चुनने में, संविधान-निर्माताओं को एक उत्तरदायी सरकार के लिए प्रेरित किया गया ताकि अध्यक्षीय प्रणाली वाली सरकार में एक टिकाऊ सरकार स्थापित की जा सके।

यद्यपि अभीष्टत: किसी भी लोकतांत्रिक कार्यपालिका को स्थिरता और उत्तरदायित्व की शर्तें पूरी करनी होती हैं, व्यवहार्य परिस्थितियों में दोनों के बीच संतुलन रखना मुश्किल रहा है। एक ग़ैर-संसदीय सरकार सत्ता में रहने के लिए किसी संसदीय बहुमत पर अपनी निर्भरता द्वारा नहीं अधिदेशित नहीं होती है। एक निश्चित कार्यकाल सुनिश्चित कर, एक ग़ैर-संसदीय प्रणाली उत्तरदायित्व की बजाय स्थिरता को बहुमूल्य समझने की प्रवृत्ति रखती है। संसदीय बहुमत पर सरकार की निर्भरता संसदीय सरकार पर इसे अवश्यकरणीय बना देती है कि यह अपने कार्यों के प्रति ज़िम्मेदार रहे। हमारे संसदीय लोकतंत्र में, संसद राष्ट्रीय बहस के लिए मंच के रूप में एक अत्यावश्यक मंत्रणात्मक भूमिका अदा करती है जिसके द्वारा वह सरकार के प्रभुत्व तथा कार्यों पर एक सार्वजनिक नियंत्रण स्थापित करती है। संसद तथा विपक्ष के विशिष्ट सदस्य प्रश्नकाल, संशोधन प्रक्रियाओं तथा आम बहसों के दौरान, पर्याप्त रूप से संसद के मंत्रणात्मक महत्त्व का प्रदर्शन कर चुके हैं। इसके अलावा, सरकारी गतिविधियों तथा नीतियों पर नियंत्रण अविश्वास प्रस्तावों, कटौती प्रस्तावों, स्थगन प्रस्तावों तथा ध्यानाकर्षण प्रस्तावों को लाकर बनाए रखा जाता है। इस प्रकार, हमारी राजनीतिक व्यवस्था में संसद का सार्वजनिक प्रभुत्व सरकारी उत्तरदायित्व के सतत् तथा आवधिक, दोनों मूल्यांकनों के माध्यम से सुदृढ़ किया जाता है। इसका संसद-सदस्यों द्वारा निरंतर तथा आम चुनावों के दौरान जनता द्वारा आवधिक रूप से मूल्यांकन किया जाता है। यह इन अध्यक्षीय प्रणालियों में विद्यमान अभिलक्षण से भिन्न है जहाँ यह मूल्यांकन केवल आवधिक होता है और कार्यकारिणी के कार्यकाल द्वारा सीमांकित होता है, जो सामान्य काल में विधायिका को अक्षरश: निष्प्रभावी बना देता है। इस प्रकार, स्थिरता पर उत्तरदायित्व को अधिक आँकने के लिए हमारी संसदीय प्रणाली की प्रभाविता के किसी भी मूल्यांकन में इसके निर्माताओं की अभिलाषाओं को संज्ञान लिया जाना चाहिए।

संसदीय प्राधार को राज्यों के स्तर पर दोहराया भी गया है जो उनकी स्वायत्तता तथा उस संघीय चेतना का सम्मान करता है जो संघ के ऐक्य को वैध ठहराता है। फलस्वरूप, राज्यों के स्तर पर हम विस्तृत प्राधार रखते हैं जो अपने नेताओं के चुने जाने तथा सरकारी गतिविधियों की देख-रेख करने में संसदीय चेतना को बनाए रखता है। विशाल संघीय राज्यों की आवश्यकताओं हेतु संसदीय

प्रणाली के अंगीकरण का अभिप्राय है कि संसद की विधायी शक्तियाँ सीमित हैं। चूँकि संघीय व राज्य सरकारों के पास पृथक, विधि-निर्माण अधिकार है जो संविधान से व्युत्पन्न है, भारतीय परिस्थिति का अभिलक्षण है – संवैधानिक सर्वोच्चता, न कि संसदीय सर्वोच्चता। संविधान की सर्वोच्चता को उस संवैधानिक प्रावधान द्वारा और सुदृढ़ किया गया है जो मौलिक अधिकारों की गारण्टी देता है तथा इन अधिकारों के एक परिरक्षक के रूप में कार्यवाही करने की शक्ति के साथ न्यायपालिका को अधिकार देता है।

संक्षेप में, हमारे संसदीय लोकतंत्र में, शासन करने की वैधता संसद में निहित है, जो उसे उस 'जनता' की स्वैच्छिक सहमति से प्राप्त होती है जो निर्वाचन-क्षेत्र बनाती है। संसद का सामूहिक व्यक्तित्व ही व्यक्तियों तथा राजनीतिक दलों, दोनों के आचार-व्यवहार हेतु संहिता लागू करता है; संसद ही व्यक्तिगत स्वतंत्रता तथा भारतीय कानूनों की बुनियाद की संरक्षक है।

हमारी संसदीय प्रणाली का एक महत्त्वपूर्ण अभिलक्षण अन्य संसदीय लोकतंत्रों की भाँति ही, यह है कि राज्य-प्रमुख तथा सरकार-प्रमुख की स्थिति तथा शक्तियों को यह स्पष्टतया सीमांकित करती है। इससे एक प्रकार से दोहरी कार्यकारणियाँ स्थापित होती हैं। सरकार-प्रमुख उस दल अथवा दलों के गठबंधन से नियुक्त किया जाता है जिसके पास संसदीय सीटों का बहुमत होता है। प्रधानमंत्री के नेतृत्व में मंत्रिपरिषद् संसद के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होती है। सामूहिक उत्तरदायित्व का सिद्धांत सरकार में जवाबदेही का विचार प्रस्तुत करता है और सरकार को ऐसे निर्णय लेने से रोकता है जिनको वह संसद के सामने न्यायसंगत सिद्ध नहीं कर सकती है। यह विचार न सिर्फ़ यह इंगित करता है कि संसदीय प्रणाली की प्रामाणिकता एक ऐसी सरकार है जो सामूहिक है, बल्कि यह भी दर्शाता है कि कार्यकारी शक्तियाँ स्वभावत: समूहयुक्त हैं जो मतों के उस बहुवाद को बनाए रखने में मदद करता है जो सत्तावाद के विरुद्ध दीवार खड़ी करता है। इसके अतिरिक्त, वैस्टमिन्सटर मॉडल से भिन्न, भारत में राज्य-प्रमुख निर्वाचित होता है और अपनी शक्तियाँ संविधान के स्पष्ट प्रावधानों के तहत ही व्यवहार में लाता है। वह कोई नाममात्र का मुखिया भी नहीं होता। संविधान संसद को यह शक्ति प्रदान करता है कि वह संविधान के उल्लंघन के लिए राष्ट्रपति पर महाभियोग लगा सके। इसका अर्थ है कि राष्ट्रपति अपने बूते कुछ ऐसे काम करने में समर्थ है जिसके लिए वह उत्तरदायी है। राष्ट्रपति संसद का भी एक अभिन्न भाग होता है और संविधान प्रदत्त ऐसी शक्तियों से लैस होता है जो उस स्थिति में संसदीय अनौचित्य पर नियंत्रण रखने में उसकी मदद करती हैं जब किसी समय संसदीय बहुमत सुनिश्चित करने में राजनीतिक दल असमर्थ रहते हैं अथवा बहुमत खो देते हैं। राष्ट्रपत्य अधिकार का महत्त्व संसद के सामने आए संकट के अनेक मौकों पर देखा गया है। उदाहरण के लिए 1979 में, राष्ट्रपति ने मोरारजी देसाई के उस आग्रह को ठुकरा दिया जो उन्होंने प्रधानमंत्री पद से इस्तीफ़ा देने के बाद सरकार बनाने के लिए किया था। 1979 में ही राष्ट्रपति ने देसाई के उत्तरवर्ती, चरणसिंह से संसद का विश्वास हासिल करने का आग्रह किया था। विश्वास प्राप्त करने में चरणसिंह की असफलता ही तदोपरांत चुनावों में परिणत हुई। यद्यपि राष्ट्रपति के उपर्युक्त कार्य विवादों में घिरे रहे, प्रतिष्ठित न्यायविदों तथा लेखकों द्वारा यह निश्चयपूर्वक कहा जाता है कि राष्ट्रपति ने वही किया जो संसदीय परम्पराओं के अनुकूल था। इसी प्रकार 1987 में, राष्ट्रपति ने भारतीय डाकघर (संशाधन) अधिनियम संसद को वापस भेज देने के लिए अपने संवैधानिक अधिकार का प्रयोग किया। इस प्रकार, भारत का राष्ट्रपति प्रधानमंत्री, मंत्रिपरिषद् तथा निर्वाचित नेतृत्व के लिए एक शक्तिमत्त राजनीतिक प्रतितोलक-भार यानी तराजू का दूसरा पलड़ा है।

भारतीय संसदीय प्रणाली में, अन्य संसदीय प्रणालियों की ही भाँति, सरकार ही संसद में तथा उसके माध्यम से उसी के द्वारा विधायी तथा कार्यकारी शाखाओं का विलय करके शासन करती है। भारतीय संविधान अनुच्छेद 75 (5) में इस निराले विलय पर यह व्यवस्था देते हुए ज़ोर देता है कि यदि कोई

मंत्री छह महीने की अवधि के भीतर किसी भी सदन का सदस्य नहीं बनता है, उसे मंत्री पद छोड़ना होगा। दूसरे शब्दों में, केवल संसद, जो कि विधायी निकाय है, का कोई सदस्य ही सरकार का मंत्री अथवा कार्यकारिणी का सदस्य बन सकता है। मंत्रिपरिषद् को इसीलिए योजक कहा जाता है, जो राज्य की विधायी शाखा से लेकर कार्यकारी शाखा तक सेतु बनाती है।

एक संसदीय प्रणाली में, जिसे कभी-कभी 'प्रधानमंत्री स्वरूप' अथवा 'मंत्रिमण्डलीय स्वरूप' वाली सरकार कहा जाता है, प्रधानमंत्री के नेतृत्व में कुछ अग्रणी मंत्रियों वाला मंत्रिमण्डल ही सभी महत्त्वपूर्ण नीतिगत निर्णय लेता है। मंत्रिमण्डल के सदस्य नीतिगत दिशा-निर्देश प्रस्तुत किए जाने में महत्त्वपूर्ण राजनीतिक भूमिका निभा सकते हैं परन्तु पूरी तरह प्रधानमंत्री के पर्यवेक्षण तथा साक्ष्य में रहकर ही। तथापि, लाल बहादुर शास्त्री के समय से ही, प्रधानमंत्री कार्यालय अर्थात् पी.एम.ओ. मंत्रिमण्डलीय शक्ति के एक महत्त्वपूर्ण वैकल्पिक स्रोत के रूप में उभरा है। पी.एम.ओ. का अधिकार तदोपरांत श्रीमती इंदिरा गाँधी के तत्त्वावधान में पुनर्प्रवर्तित किया गया और उसकी भूमिका वास्तविक निर्णयन् में विस्तीर्ण की गई। मंत्रिमण्डल अथवा पी.एम.ओ. के इस अधिकार ने कुछ हद तक संसदीय विशेषाधिकारों तथा उसकी विधायी प्रक्रिया का अतिक्रमण किया है, सर्वाधिक विशेष रूप से, राष्ट्रपति के नाम से जारी अध्यादेश द्वारा विधि-निर्माण के प्रायिक अधिनियमन द्वारा। आज पी.एम.ओ. राजनीतिक प्राधार में एक महत्त्वपूर्ण प्रभुत्व केन्द्र है, जो न सिर्फ़ वास्तविक निर्णयन् में अपने प्रभुत्व पर बल्कि सरकार के अन्य मंत्रालयों द्वारा नीति-क्रियान्वयन के अनुश्रवण तथा समन्वयन पर भी ज़ोर देता है।

तथापि, शासन उस संस्थागत प्राधार द्वारा सिर्फ़ अधिदिष्ट ही नहीं है, जो स्थापित है बल्कि उन संस्थानों तथा राजनीतिक संस्कृति की अन्तर्क्रिया की द्वन्द्वात्मक पद्धति है जहाँ हरेक का दूसरे पर प्रभाव है। स्वतंत्रता के तुरन्त बाद, एकमात्र प्रबल राजनीतिक दल की विद्यमानता, जिसे बहुत छोटे विपक्ष का सामना करना पड़ा, ने उस राजनीतिक बहुवाद के सिद्धांत को नकारात्मक रूप से प्रभावित किया जो संसदीय ढाँचे का आधार हो। उस परिस्थिति में जहाँ सरकार में किसी दल का बहुमत था, विधायिका एक 'बोलने वाली कार्यशाला' बन गई थी। संसदीय प्रक्रियाओं पर जवाहरलाल नेहरू का चमत्कार छाया हुआ था जो आशीष नन्दी के अनुसार, स्वयं ही विपक्ष बन गए थे जो दोषों के लिए अपने मंत्रियों की आलोचना और विकास हेतु नीतियाँ लागू करने के लिए उनकी प्रशंसा करते रहते थे। यद्यपि, इस अवधि के दौरान प्रधानमंत्री का प्रभुत्व भारतीय राजनीतिक प्रणाली में सर्वोच्चता तथा प्रमुखता हासिल कर चुका था, संसदीय लोकतंत्र के सारतत्त्व तथा एक संघ की आवश्यकताओं ने प्राय: स्वायत्त रहते हुए राज्य तथा केन्द्रीय राजनीति के साथ अच्छा काम किया। इस काल के दौरान, राजनीति-शास्त्री पॉल ब्रास के अनुसार, एक परस्पर सौदाकारी स्थिति में, सशक्त राज्यों के साथ एक सशक्त केन्द्रीय सरकार सह-अस्तित्व में थी। इसके अतिरिक्त, इस चरण के दौरान, सेना पर असैनिक नियंत्रण की मज़बूत पकड़ का प्रबलता से दावा किया जाता था और संसद के प्रति ज़िम्मेदार एक राजनीतिक कार्यकारिणी स्पष्ट और प्रभावशाली नीति-निर्देश प्रदान करती थी।

नेहरू की मृत्यु और कांग्रेस, भारतीय राजनीति में पूर्व-प्रतिष्ठित प्रभुत्व रखने वाली एक पार्टी, के भीतर सत्ता-संघर्षों के बाद, संसदीय लोकतंत्र से जुड़े मूल्यों का ह्रास हुआ और संघीय विचारधारा भीतर से दुर्बल बना दी गई। उस प्रभावशाली स्थिति को बरकरार रखने में कांग्रेस पार्टी के प्रयासों ने पार्टी के भीतर केन्द्रीकरण करती प्रवृत्तियों और यहाँ तक कि उसके अधिरोपण की ओर अग्रसर किया जिसे श्रीमती इन्दिरा गाँधी की सरकार के तत्त्वावधान में 'वैकल्पिक तानाशाही' का नाम दिया जा सकता है। बहरहाल, इस विधि के दौरान भी संसद की महत्ता और आवश्यकता प्रदर्शन रूपी न्यायसंगत थीं। कांग्रेस पार्टी में संकट और सत्ता-संघर्ष 1969 में पार्टी के बीच एक सीधी दरार में परिणत हुए जो भारत के राष्ट्रपति पद हेतु कांग्रेस नामित व्यक्ति और राष्ट्रपति के रूप में श्रीमती

गाँधी के प्रत्याशी वी.वी. गिरि के निर्वाचन पर उठ खड़े हुए थे। श्रीमती गाँधी को कांग्रेस पार्टी से निष्कासित कर दिया गया, परन्तु इस निष्कासन का प्रधानमंत्री के रूप में स्थिति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा क्योंकि उन्होंने संसद में और संसद-सदस्यों के बीच अपना समर्थन कायम रखा। इस प्रकार, संसद में बहुमत रखने वाले दल में एक नेतृत्व संकट ने सरकार की प्रकार्यात्मकता को प्रभावित नहीं किया जिसने प्रभावशाली ढंग से संसदीय प्रक्रियाओं के महत्त्व को दर्शाया। संसदीय प्रक्रिया का यह महत्त्व 1979 में फिर प्रदर्शित हुआ, जब संसद में जनता पार्टी-सदस्यों के वर्ग ने मोरारजी देसाई के साथ असंतुष्टि व्यक्त की, जो देसाई के त्याग-पत्र में परिणत हुआ।

तथापि, श्रीमती गाँधी के शासनकाल में संसदीय वैधता और पवित्रता को अत्यधिक चुनौतियों का सामना करना पड़ा। 1973-74 में, उदाहरण के लिए, श्रीमती गाँधी द्वारा कार्य-प्रणाली के उच्चरूप से वैयक्तिक तथा सत्तावादी तरीके से जुड़े खाद्यान्न की कमी, चढ़ती कीमतों ने परिणामस्वरूप देश के अनेक भागों में बड़े राजनीतिक प्रदर्शन हुए। इसको एक न्यायालय के अभिनिर्णय से हवा मिली जिसमें श्रीमती गाँधी का 1971 का चुनाव अवैध ठहराया गया था। श्रीमती गाँधी ने कुछ इस तरह प्रत्युत्तर दिया जिससे कि संसदीय लोकतंत्र को एक प्रकार से क्षति पहुँची। अभिव्यक्ति की स्वतंत्र, नागरिक स्वच्छंदताओं का उपभोग, एक स्वतंत्र प्रैस तथा विपक्ष जैसे संसदीय लोकतंत्र के मौलिक सिद्धांतों पर अनुच्छेद 352 के तहत आपात्स्थिति लागू करके प्रतिबंध लगा दिया गया। इसके अतिरिक्त, संसदीय सर्वोच्चता का तर्क संसदीय मूल्यों तथा प्रक्रियाओं के दुर्बलीकरण को न्यायोचित ठहराने के लिए प्रयोग किया गया। यह सब उन कानूनों को प्रतिलंघित करते नए चुनावी कानूनों को अधिनियमित करते हुए किया गया जिनके तहत इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने श्रीमती गाँधी के चुनाव को अवैध ठहराया था। संसद के इस कृत्य से वैधानिक पुनरावलोकन की उस प्रक्रिया को भीतरी रूप से क्षति पहुँची जिसका काम है संसदीय सत्तावाद के विरुद्ध रक्षात्मक आड़ बनकर रहना। यह अतिशय कार्यकारी शक्ति तथा वैधानिक स्वतंत्रता की भितरघात प्रमाणित मूल्यों व प्रक्रियाओं हेतु आदर के बग़ैर शासक राजनीतिक दल के प्रति दृढ़-प्रतिज्ञ मुख्य न्यायाधीशों तथा न्यायाधीशों के पसंद के साथ, इस काल में जारी रही।

वस्तुत:, श्रीमती गाँधी के नेतृत्व वाली कांग्रेस पार्टी की 1977 के आम चुनावों में हार ने भारत के संसदीय लोकतंत्र की मज़बूत व गहरी जड़ों को प्रतिबिम्बित किया। भारत की 'जनता' ने किसी पार्टी-विशेष में निहित अपने जनादेश व निष्ठा के उत्क्रमण द्वारा आवधिक रूप से अपने मताधिकार का प्रयोग करने में काफ़ी परिपक्वता दर्शायी है। उदाहरण के लिए, राजीव गाँधी, 1985 में संसद में लगभग 80 प्रतिशत सीटें सुनिश्चित करके जो कांग्रेस पार्टी को एक विशालकाय विजय की ओर ले गए थे, को 1989 में एक अपमानजनक पराजय का सामना करना पड़ा।

भारतीय संसदीय प्रणाली ने 1975 में एक अल्पकालीन अन्तराल के लिए अपना टूटना देखा, 1977 में वह पूर्वावस्था में लौटी फिर 1979 में जनता सरकार के पतन और श्रीमती गाँधी के सत्ता में लौटने तक उसने उत्तरीजीविता बनाए रखी। 1985 में राजीव गाँधी द्वारा हासिल अभूतपूर्व बहुमत के बाद कांग्रेस की हार हुई और 1989 में वी.पी. सिंह सरकार की और उसके बाद 1990 में चन्द्रशेखर की सरकार की स्थापना हुई। 1991 के आम चुनावों में पी.वी. नरसिम्हाराव के तत्त्वावधान में कांग्रेस सरकार की वापसी देखी गई, जो उन तरीकों से अपने कार्यकाल तक टिकी रही जिनकी अब विधायिका द्वारा जाँच की जा रही है। फलस्वरूप रिश्वत मामले की सुनवाई ने कुछ सवालों के साथ हमारी संसदीय प्रक्रियाओं के समक्ष चुनौतियाँ खड़ी की हैं, जैसे संसद के दायरे में हुए कार्य न्यायिक विवृत्ति के शासनाधीन हैं अथवा नहीं।

1996 के आम चुनावों के विभंजित अभिनिर्णय ने प्रारम्भत: अटल बिहारी वाजपेयी की एक 13-दिनी सरकार की स्थापना, 13 माह की देवेगौड़ा की और 1997 में इंद्रकुमार सरकार की

स्थापना की ओर अग्रसर किया। 1998 के उपचुनाव फिर से एक विभंजित अभिनिर्णय में परिणत हुए जो वाजपेयी सरकार के उस गठन की ओर ले गए जिसने एक गठबंधन-सदस्य द्वारा समर्थन वापस लिए जाने के बाद, शीघ्र ही अपना बहुमत खो दिया। ऐसी स्थिति में जब कोई भी राजनीतिक दल सरकार गठित करने हेतु दावा करने की स्थिति में नहीं था, संसद भंग कर दी गई और आम चुनावों की घोषणा कर दी गई। 1999 के आम चुनावों ने निर्वाचक की ध्रुवीकृत मानसिकता और संसद में स्पष्ट बहुमत सुनिश्चित करने में किसी भी दल की असमर्थता को प्रतिबिम्बित किया। इसने राष्ट्रीय लोकतांत्रिक गठबंधन (एन.डी.ए.), वाजपेयी के नेतृत्व में तेरह विभिन्न दलों के एक गठजोड़ के निर्माण और सरकार बनाने के लिए उसके दावे की ओर प्रवृत्त किया।

बहरहाल, यद्यपि इन सब घटनाओं ने सरकारी कार्यप्रणाली में अस्थिरता की ओर प्रवृत्त किया, इसका राजनीतिक सत्ता के अवस्थान्तर गमन पर कोई नकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ा। सरकारी कार्यप्रणाली की अस्थिरता ने अस्थायित्व अथवा सरकार के अन्य अंगों द्वारा संसदीय प्रभुत्व के अनाधिकार ग्रहण अथवा किसी प्रकार के सत्तावाद के स्थापन हेतु उग्र राजनीतिक दावों के अभिकथन को प्रवृत्त नहीं किया। यह दर्शाता है कि संसदीय अन्तरात्मा हमारी राज्य व्यवस्था में सभी कर्ताओं की राजनीतिक संचेतना में गहरे निहित है जिसके द्वारा हमारे संसदीय लोकतंत्र की आवश्यकता और महत्ता को बढ़ावा मिलता है।

भारतीय संसदीय प्राधार इस प्रकार जाँचों और विपत्तियों से गुज़रते परिपक्व हुआ, एकमात्र दल द्वारा शासित एक संस्थान् से चलकर एक उच्च रूप से ध्रुवीकृत राजनीतिक मतों व जनादेश वाले विभंजीकृत राज्य के उद्गमन तक। यद्यपि, हम एक संसदीय राज्य-व्यवस्था के रूप में अस्थिर तथा बारंबार बदलती सरकारों के साथ बहुत-से संकटों से गुजरे हैं, हमारे संसदीय प्राधारों का प्रभाव तथा तर्कसंगतता इस प्रक्रिया में परिपक्व ही हुए हैं। यद्यपि राजनीतिक प्राधार की पुनर्संरचना हेतु माँगों को इन अस्थिर क्षणों के कारण गति मिली है, इसको आकस्मिक रूप से अत्यधिक विपरीतता ही मिली है। यह विपरीतता इन दावों के आधार पर न्यायसंगत है कि राजनीतिक व्यवस्था में कोई भी परिवर्तन सत्तावाद की प्रक्रिया को बढ़ाएगा ही, जो कि राजनीतिक बहुवाद की वास्तविक प्रकार्यात्मकता को न सिर्फ़ हानि पहुँचाएगा बल्कि विविध धर्मों, नृजाति, जनजातीय अथवा अन्य संबंधों को सम्मान देती हमारी उदारता के आधार को भी प्रभावित करेगा।

बोध प्रश्न 2

नोट : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिए गए आदर्श उत्तरों से करें।

1) संसदीय सरकार स्थिर सरकार की अपेक्षा एक उत्तरदायी सरकार अधिक है। स्पष्ट करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) वे दो कारक क्या हैं जो भारत में संसदीय सर्वोच्चता की अपेक्षा संवैधानिक सर्वोच्चता को स्थापित करते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

9.4 सारांश

सरकार के मंत्रिमण्डलीय स्वरूप अथवा प्रधानमंत्रीय स्वरूप में भी जाने जाने वाली संसदीय प्रणाली ने ऐतिहासिक रूप से सार्वजनिक अधिकारों के लिए राजाओं के विरुद्ध संघर्ष का नेतृत्व किया। हमने देखा कि यद्यपि संसदीय सरकार का उद्‌भव ब्रिटेन में हुआ, यह अनेक देशों द्वारा अपनायी गई है – समुचित परिवर्तनों के साथ विकासशील तथा विकसित, दोनों देशों में। भारत में संसदीय प्रणाली के कुछ आधारभूत लक्षण निम्न प्रकार हैं :

- संसद में दल प्रतिनिधित्व अथवा गठबंधन शक्ति पर आधारित संसदीय चुनावों के परिणामस्वरूप बनी एक सरकार;
- इस प्रणाली का आधारभूत लक्षण है राजनीतिक बहुवाद जो एक विषमजातीय राज्य-व्यवस्था के हितों व आकांक्षाओं को प्रकट करती नानारूप विचारधाराओं तथा लक्ष्यों वाले प्रतिस्पर्धी राजनीतिक दलों की विद्यमानता को स्वीकृति देता है;
- मंत्रिगण अथवा वास्तविक कार्यकारिणी (सरकार) के सदस्य के संसद उन दलों से लिए जाते हैं जो संसद में बहुमत रखते हैं अथवा गठबंधन के घटक होते हैं;
- सरकार संसद के प्रति जिम्मेदार और जवाबदेह होती है, इस अर्थ में कि यह संसद के विश्वास पर टिकी होती है और उस विश्वास के अभाव में हटाई जा सकती है;
- सरकार संसद भंग करने की सिफ़ारिश कर सकती है और उस स्थिति में एक आम चुनाव करवा सकती है जब कोई भी दल सरकार बनाने की स्थिति में न हो, यानी कि चुनावीय शर्तें सामान्यत: एक अधिकतम सीमा की भीतर सुनम्य होती हैं;
- संसदीय कार्यपालिका सामूहिक होती है और शक्ति प्रसार की प्रकृति संघ स्वरूप होती है;
- सरकार-प्रमुख और राज्य-प्रमुख के पद अलग-अलग होते हैं जहाँ राष्ट्रपति संविधानसम्मत नाममात्र का अध्यक्ष और प्रधानमंत्री, मंत्रिपरिषद् का अग्रणी, वास्तविक कार्यकारी होता है।

9.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

ए.आर. देसाई, *स्टेट एण्ड सॉसाइटी इन् इण्डिया : एस्सेज़ इन् डिसेण्ट*, पॉपुलर प्रकाशन, बम्बई, 1975।

एन्थनी जे. पैरल **(Ti.),** *गाँधी – हिन्द स्वराज एण्ड अदर राइटिंग्स*, कैम्ब्रिज टैक्ट्स मॉडर्न पॉलिटिक्स, नई दिल्ली, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 19971

एण्ड्रयू हेवुड की कॉन्सैपट्स इन पॉलिटिक्स, मैकमिलन प्रैस लिमिटेड, ग्रेट ब्रिटेन, 2000।

जय प्रकाश नारायण, 'ए प्ली फॉर रिकंसट्रक्शन ऑव इण्डियन पॉलिटी', विमल प्रसाद (सं.) कृत *ए रिवल्यूशनरी'ज़ क्वैस्ट : सिलेक्टिड राइटिंग्स ऑव जे.पी. नारायण में,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली 1980।

पॉल ब्रास, *दि पॉलिटिक्स ऑव इण्डिया सिन्स इण्डिपेण्डेन्स,* कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रैस, प्रथम संशोधित भारतीय संस्थान, 1922।

9.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) संसदीय प्रणाली में सरकार का कार्यकारी तथा विधायी अंगों का विलय होता है जबकि अध्यक्षीय प्रणाली वाली सरकार सरकार के तीन अंगों के बीच शक्ति-विभाजन के सिद्धान्त पर आधारित होती है।

2) इसका कार्य है कि कार्यपालिका एकाधिक है। प्रधानमंत्री कैबिनेट प्रमुख हो सकता है, परन्तु लिए गए निर्णयों को कैबिनेट का सामूहिक समर्थन प्राप्त होना चाहिए क्योंकि मंत्रीगण विधायिका के प्रति सिर्फ़ व्यक्तिगत रूप में नहीं बल्कि सामूहिक रूप से उत्तरदायी होते हैं।

बोध प्रश्न 2

1) संसद राष्ट्रीय बहस हेतु एक मंच की मंत्रणात्मक भूमिका निभाती है। यह स्वयं ही सरकारी प्राधिकरण पर नियंत्रण रखती है, यद्यपि विधायिका का विस्तृत होने के कारण सरकार विभिन्न संसदीय युक्तियों के माध्यम से सीधे जवाबदेह होती है। यह एक जिम्मेदार सरकार सुनिश्चित करता है, यद्यपि जरूरी नहीं कि एक स्थिर संख्या हो। ग़ैर-संसदीय प्रणाली जिम्मेदार नहीं हो सकती है, क्योंकि इसमें कार्यपालिका का कार्यकाल निश्चित होता है। इसके अलावा, चुनाव के दिनों में छोड़कर कार्यपालिका की जनता के प्रति जवाबदेही सुनिश्चित करना मुश्किल होता है।

2) एक है केन्द्र तथा राज्य सरकारों के बीच विधि-निर्माण शक्तियों का संघीय विभाजन और दूसरा है संविधान में वे प्रावधान जो मौलिक अधिकारों का गारण्टी देते हैं।